अध्याय ४५

संदेह निवारण

काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के शयन के लिये लकड़ी का तख्ता।

प्रस्तावना

गत तीन अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब बाबा का साकार स्वरूप लुप्त हो गया है, परन्तु उनका निराकार स्वरूप सदैव विद्यमान रहेगा। अभी तक केवल उन्हीं घटनाओं और लीलाओं का उल्लेख किया गया है, जो बाबा के जीवनकाल में घटित हुई थीं। उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् भी अनेक लीलाएँ हो चुकी हैं और अभी भी देखने में आ रही हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि **बाबा अभी भी विद्यमान हैं और पहले के ही भाँति अपने भक्तों को सहायता पहुँचाया करते हैं।** बाबा के जीवन-काल में जिन व्यक्तियों को उनका सान्निध्य या सत्संग प्राप्त हुआ, यथार्थ में उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है? यदि किसी को फिर भी ऐंद्रिक और सांसारिक सुखों से वैराग्य प्राप्त नहीं हो सका तो इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? जो उस समय आचरण में लाया जाना चाहिए था और अभी भी लाया जाना चाहिए, वह है अनन्य भाव से बाबा की भक्ति। समस्त चेतनाओं, इन्द्रिय-प्रवृत्तियों और मन को एकाग्र कर बाबा के पूजन और सेवा की ओर लगाना चाहिए। कृत्रिम पूजन से क्या लाभ? यदि पूजन या ध्यानादि करने की ही अभिलाषा है तो वह शुद्ध मन और अन्तःकरण से होनी चाहिए।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का विशुद्ध प्रेम अपने पति पर होता है, इस प्रेम की उपमा कभी-कभी लोग शिष्य और गुरु के प्रेम से भी दिया करते हैं। परन्तु फिर भी शिष्य और गुरु-प्रेम के समक्ष पतिव्रता

का प्रेम फीका है और उसकी कोई समानता नहीं की जा सकती। माता, पिता, भाई या अन्य सम्बन्धी जीवन का ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) प्राप्त करने में कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते। इसके लिये हमें स्वयं अपना मार्ग अन्वेषण कर आत्मानुभूति के पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। नित्य और अनित्य में विवेक, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों का त्याग, इन्द्रियनिग्रह और केवल मोक्ष की धारणा रखते हुए अग्रसर होना पड़ता है। दूसरों पर निर्भर रहने के बदले हमें आत्मविश्वास बढ़ाना उचित है। जब हम इस प्रकार विवेक-बुद्धि से कार्य करने का अभ्यास करेंगे तो हमें अनुभव होगा कि यह संसार नाशवान् और मिथ्या है। इस प्रकार की धारणा से सांसारिक पदार्थों में हमारी आसक्ति उत्तरोत्तर घटती जाएगी और अन्त में हमें उनसे वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा। तब कहीं आगे चलकर यह रहस्य प्रकट होगा कि ब्रह्म हमारे गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं, वरन् यथार्थ में वे ही सद्वस्तु (परमात्मा) हैं; और यह रहस्योद्घाटन होता है कि यह दृश्यमान जगत् उनका ही प्रतिबिम्ब है। अतः इस प्रकार हम सभी प्राणियों में उनके ही रूप का दर्शन कर उनका पूजन करना प्रारम्भ कर देते हैं और यही समत्वभाव दृश्यमान जगत् से विरक्ति प्राप्त करानेवाला मूलमंत्र है। इस प्रकार जब हम ब्रह्म या गुरु की अनन्यभाव से भक्ति करेंगे तो हमें उनसे अभिन्नता की प्राप्ति होगी और आत्मानुभूति की प्राप्ति सहज हो जाएगी। संक्षेप में यह कि सदैव गुरु का कीर्त्तन और उनका ध्यान करना ही हमें सर्वभूतों में भगवत् दर्शन करने की योग्यता प्रदान करता है और इसी से परमानंद की प्राप्ति होती है। निम्नलिखित कथा इस तथ्य का प्रमाण है।

काकासाहेब का सन्देह तथा आनन्दराव का स्वप्न

यह तो सर्वविदित ही है कि बाबा ने काकासाहेब दीक्षित को श्री एकनाथ महाराज के दो ग्रन्थ (१) श्रीमद्भागवत और (२) भावार्थ रामायण का नित्य पठन करने की आज्ञा दी थी। काकासाहेब इन ग्रन्थों का नियमपूर्वक पठन बाबा के समय से करते आए हैं और बाबा के समाधिस्थ होने के उपरांत अभी भी वे उसी प्रकार अध्ययन कर रहे

हैं। एक समय चौपाटी (बम्बई) में काकासाहेब प्रात:काल एकनाथी भागवत का पाठ कर रहे थे। माधवराव देशपांडे (शामा) और काका महाजनी भी उस समय वहाँ उपस्थित थे तथा ये दोनों ध्यानपूर्वक पाठ श्रवण कर रहे थे। उस समय ११ वें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का वाचन चल रहा था, जिसमें नवनाथ अर्थात् ऋषभ वंश के सिद्ध यानी कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन का वर्णन है, जिन्होंने भागवत धर्म की महिमा राजा जनक को समझायी थी। राजा जनक ने इन नव-नाथों से बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे और इन सभी ने उनकी शंकाओं का बड़ा सन्तोषजनक समाधान किया था, अर्थात् कवि ने भागवत धर्म, हरि ने भक्ति की विशेषताएँ, अंतरिक्ष ने माया क्या है, प्रबुद्ध ने माया से मुक्त होने की विधि, पिप्पलायन ने परब्रह्म के स्वरूप, आविर्होत्र ने कर्म के स्वरूप, द्रुमिल ने परमात्मा के अवतार और उसके कार्य, चमस ने नास्तिक की मृत्यु के पश्चात् की गति एवं करभाजन ने कलिकाल में भक्ति की पद्धतियों का यथाविधि वर्णन किया। इन सबका अर्थ यही था कि कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन केवल हरिकीर्त्तन या गुरु-चरणों का चिंतन ही है। पठन समाप्त होने पर काकासाहेब बहुत निराशापूर्ण स्वर में माधवराव और अन्य लोगों से कहने लगे कि नवनाथों की भक्ति पद्धति का क्या कहना है, परन्तु उसे आचरण में लाना कितना दुष्कर है? नाथ तो सिद्ध थे, परन्तु हमारे समान मूर्खों में इस प्रकार की भक्ति का उत्पन्न होना क्या कभी संभव हो सकता है? अनेक जन्म धारण करने पर भी वैसी भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती तो फिर हमें मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकेगा? ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लिये तो कोई आशा ही नहीं है। माधवराव को यह निराशावादी धारणा अच्छी न लगी। वे कहने लगे कि हमारा अहोभाग्य है, जिसके फलस्वरूप ही हमें साई सदृश अमूल्य हीरा हाथ लग गया है, तब फिर इस प्रकार निराशा का राग अलापना उचित नहीं है। यदि तुम्हें बाबा पर अटल विश्वास है तो फिर इस प्रकार चिंतित होने की आवश्यकता ही क्या है? माना कि नवनाथों की भक्ति अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ और प्रबल होगी, परन्तु क्या हम लोग भी प्रेम और

स्नेहपूर्वक भक्ति नहीं कर रहे हैं? क्या बाबा ने अधिकारपूर्ण वाणी में नहीं कहा है कि श्रीहरि या गुरु के नामजाप से मोक्ष की प्राप्ति होती है? तब फिर भय और चिन्ता का स्थान ही कहाँ रह जाता है? परन्तु फिर भी माधवराव के वचनों से काकासाहेब का समाधान न हुआ। वे फिर भी दिन भर व्यग्र और चिन्तित ही बने रहे। यह विचार उनके मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काट रहा था कि किस विधि से नवनाथों के समान भक्ति की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी?

एक महाशय, जिनका नाम आनन्दराव पाखाडे था, माधवराव को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ आ पहुँचे। उस समय भागवत का पठन हो रहा था। श्री पाखाडे भी माधवराव के समीप ही जाकर बैठ गए और उनसे धीरे-धीरे कुछ वार्त्ता करने लगे। वे अपना स्वप्न माधवराव को सुना रहे थे। इनकी कानाफूसी के कारण पाठ में विघ्न उपस्थित होने लगा। अतएव काकासाहेब ने पाठ स्थगित कर माधवराव से पूछा कि क्यों, क्या बात हो रही है? माधवराव ने कहा कि कल तुमने जो सन्देह प्रकट किया था, यह चर्चा भी उसी का समाधान है। कल बाबा ने श्री पाखडे को जो स्वप्न दिया है, उसे इनसे ही सुनो। इसमें बताया गया है कि **विशेष भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं, केवल गुरु को नमन या उनका पूजन करना ही पर्याप्त है।** सभी को स्वप्न सुनने की तीव्र उत्कंठा थी और सबसे अधिक काकासाहेब को। सभी के कहने पर श्री पाखडे अपना स्वप्न सुनाने लगे, जो इस प्रकार है - ''मैंने देखा कि मैं एक अथाह सागर में खड़ा हुआ हूँ। पानी मेरी कमर तक है और अचानक ही जब मैंने ऊपर देखा तो साईबाबा के श्री-दर्शन हुए। वे एक रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान थे और उनके श्री-चरण जल के भीतर थे। यह सुन्दर दृश्य और बाबा का मनोहर स्वरूप देख मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। इस स्वप्न को भला कौन स्वप्न कह सकेगा? मैंने देखा कि माधवराव भी बाबा के समीप ही खड़े हैं और उन्होंने मुझसे भावपूर्ण शब्दों में कहा कि, ''आनन्दराव! बाबा के श्रीचरणों पर गिरो।'' मैंने उत्तर दिया कि, ''मैं भी तो यही करना चाहता हूँ, परन्तु उनके श्रीचरण तो जल के भीतर हैं। अब बताओ कि मैं कैसे अपना शीश उनके चरणों पर रखूँ। मैं तो निस्सहाय

हूँ।'' इन शब्दों को सुनकर शामा ने बाबा से कहा कि, ''अरे देवा! जल में से कृपाकर अपने चरण बाहर निकालिये न।'' बाबा ने तुरन्त चरण बाहर निकाले और मैं तुरन्त उनसे लिपट गया। बाबा ने मुझे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि 'अब तुम आनंदपूर्वक जाओ। घबराने या चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम्हारा कल्याण होगा।' उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि, एक ज़री के किनारों की धोती मेरे शामा को दे देना, इससे तुम्हें बहुत लाभ होगा।''

बाबा की आज्ञा को पूर्ण करने के लिये ही श्री पाखाडे धोती लाये और काकासाहेब से प्रार्थना की कि कृपा करके इसे माधवराव को दे दीजिये, परन्तु माधवराव ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि जब तक बाबा से मुझे कोई आदेश या अनुमति प्राप्त नहीं होती ऐसा करने में असमर्थ हूँ। कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् काका ने दैवी आदेशसूचक पर्चियाँ निकालकर इस बात का निर्णय करने का विचार किया। काकासाहेब का यह नियम था कि जब उन्हें कोई सन्देह हो जाता तो वे कागज की दो पर्चियों पर 'स्वीकार-अस्वीकार' लिखकर उसमें से एक पर्ची निकालते और जो कुछ उत्तर प्राप्त होता था, उसके अनुसार ही कार्य किया करते थे। इसका भी निपटारा करने के लिये उन्होंने उपर्युक्त विधि के अनुसार ही दो पर्चियाँ लिखकर बाबा के चित्र के समक्ष रखकर एक अबोध बालक को उसमें से एक पर्ची उठाने को कहा। बालक द्वारा उठाई गई पर्ची जब खोलकर देखी गई तो वह स्वीकारसूचक पर्ची ही निकली और तब माधवराव को धोती स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार आनंदराव और माधवराव सन्तुष्ट हो गए और काकासाहेब का भी सन्देह दूर हो गया।

इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि **हमें अन्य संतों के वचनों का उचित आदर करना चाहिए, परन्तु साथ ही साथ यह भी परम आवश्यक है कि हमे अपनी माँ अर्थात् गुरु पर पूर्ण विश्वास रख, उनके आदेशों का अक्षरश: पालन करना चाहिए, क्योंकि अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे कल्याण की उन्हें अधिक चिन्ता है।**

बाबा के निम्नलिखित वचनों को हृदयपटल पर अंकित कर लो - **''इस विश्व में असंख्य सन्त हैं, परन्तु अपना पिता (गुरु) ही**

सच्चा पिता (सच्चा गुरु) है। दूसरे चाहे कितने ही मधुर वचन क्यों न कहते हों, परन्तु अपना गुरु-उपदेश कभी नहीं भूलना चाहिए। संक्षेप में सार यही है कि शुद्ध हृदय से अपने गुरु से प्रेम कर, उनकी शरण जाओ और उन्हें श्रद्धापूर्वक साष्टांग नमस्कार करो। तभी तुम देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख भवसागर का अस्तित्व वैसा ही है, जैसा सूर्य के समक्ष अँधेरे का।''

बाबा के शयन के लिए लकड़ी का तख्ता

बाबा अपने जीवन के पूर्वाद्ध में एक लकड़ी के तख्ते पर शयन किया करते थे। वह तख्ता चार हाथ लम्बा और एक बित्ता चौड़ा था, जिसके चारों कोनों पर चार मिट्टी के जलते दीपक रखे जाया करते थे। बाद में बाबा ने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। (जिसका वर्णन गत अध्याय दस में हो चुका है)। एक समय बाबा उस पटिये की महत्ता का वर्णन काकासाहेब को सुना रहे थे, जिसको सुनकर काकासाहेब ने बाबा से कहा कि यदि अभी भी आपको उससे विशेष स्नेह है तो मैं मस्जिद में एक दूसरी पटिया लटकाये देता हूँ। आप सुखपूर्वक उस पर शयन किया करें। तब बाबा कहने लगे कि, ''अब म्हालसापति को नीचे छोड़कर मैं ऊपर नहीं सोना चाहता।''

काकासाहेब ने कहा कि, ''यदि आज्ञा दें तो मैं एक और तख्ता म्हालसापति के लिये भी टाँग दूँ।''

बाबा बोले कि, ''वे इस पर कैसे सो सकते हैं? क्या यह कोई सहज कार्य है? जो उस गुण से सम्पन्न हो, वही ऐसा कार्य कर सकता है। जो खुले नेत्र रखकर निद्रा ले सके, वही इसके योग्य है। जब मैं शयन करता हूँ तो बहुधा म्हालसापति को अपने बाजू में बैठाकर उनसे कहता हूँ कि मेरे हृदय पर अपना हाथ रखकर देखते रहो कि कहीं मेरा भगवद् जाप बन्द न हो जाए और मुझे यदि थोड़ा-सा भी निद्रित देखो तो तुरंत जागृत कर दो, परन्तु उससे तो यह भी नहीं हो सकता। वह तो स्वयं ही झपकी लेने लगता है और निद्रामग्न होकर अपना सिर डुलाने लगता है और जब मुझे भगत का हाथ पत्थर-सा भारी प्रतीत होने लगता है तो मैं जोर से पुकार उठता हूँ कि ''ओ भगत''। तब

कहीं वह घबरा कर नेत्र खोलता है। जो पृथ्वी पर ही अच्छी तरह बैठ और सो नहीं सकता तथा जिसका आसन सिद्ध नहीं है, और जो निद्रा का दास है, वह क्या तख्ते पर सो सकेगा?''[१] अन्य अनेक अवसरों पर वे भक्तों के स्नेहवश ऐसा कहा करते थे कि, **''अपना अपने साथ और उसका उसके साथ।''**

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

---

१. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने:॥ –गीता २/६९